मूल्यानुगत मीडिया

वर्ष-2 | अंक- 10 | पृष्ठ- 8 **MULYANUGAT MEDIA** नवंबर 2008

प्रिंट से पाठकों की बढ़ती दूरी

□ सुधीश पचौरी

युवा पाठक वर्ग प्रिंट से दूर जा रहा है। एक ओर जहां सर्कुलेशन के आंकड़े बढ़त पर नजा आते रहे हैं, वहीं दूसरी ओर यह भी चिंता सामने आई है कि पाठक संख्या में लगातार गिरावट जारी है। हो सकता है कि सर्वे के सैंपल का दोष हो। लेकिन जो तथ्य सामने आए हैं वे बदलने वाले नहीं लगते।

यह बात मीडिया रिसर्च यूजर्स काउंसिल के वाइस चेयरमैन एंड्रू पुरुषोत्तम ने नए इंडियन रीडरशिप सर्वे 2008 के रिलीज के मौके पर कही है। यह सर्वे इस बात को बताता है कि सबसे ज्यादा बिकने वाले अखबार कौन से हैं? ऐसे आंकड़े अक्सर असली नंबर वन कौन के विवादों को जन्म देते रहते हैं। ऐसे सर्वे के मानक या सर्वे के परिणामों को लेकर विवाद हर साल की तरह इस बार भी हो सकता है। ऐसे विवाद बहुत मानी नहीं रखते। इस बार इस नंबर वन वादी खेल से परे सर्वे ने प्रिंट के गिरावट या ठहराव के खतरे के जो संकेत दिए हैं वे सारे प्रिंट और मीडिया उद्योग के लिए विचारणीय हैं। सर्वे का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि सकल रीडरशिप, पाठक संख्या गिर रही है। यद्यपि अभी यह बहुत चिंताजनक नहीं लगती, लेकिन इसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। अभी यह गिरावट ऐसी नहीं लगती कि विज्ञापनदाता प्रिंट के अग्रणी अखबारों से हटने लगें, मगर यदि यह गिरावट कुछ दिन इसी गति से चली तो बात गंभीर हो जानी है। प्रिंट में मंदी आ सकती है।

सर्वे ने सबसे ज्यादा बिकने वाले अखबारों और पत्रिकाओं में टॉप टेन के आंकड़े अलग-अलग दिए हैं। सर्वे दो चक्र में किया गया है। पहले वाले चक्र के अनुसार अंग्रेजी भाषा में छपने वाले पहले दस अखबारों की सकल पाठक संख्या 39.2 मिलियन बताई गई जोकि इस सर्वे में घटकर 38.8 मिलियन रह गई है। जाहिर है यह एक मामूली गिरावट ही है, लेकिन गिरावट तो है ही। इसी सर्वे में हिंदी प्रिंट की कहानी कुछ ढंग से आई है। यह अंग्रेजी की तरह की गिरावट की कहानी नहीं है, बल्कि कुछ दशमलव बढ़त की ही कहानी है। सर्वे कहता है कि हिंदी के टॉप टेन अखबारों की सकल पाठक संख्या पहले चक्र में जहां 190.9 मिलियन थी... **शेष पेज दो पर**

बाजारवाद के गुलाम बने न्यूज चैनल

भोपाल। आज न्यूज चैनल केवल तीन आर, राज ठाकरे, राखी सावंत और राजू श्रीवास्तव के बूते चल रहे हैं। बाजारवाद के शिकंजे में फंसकर यह सामाजिक सरोकारों से दूर हैं और ज्ञान का स्रोत होने के बजाय फूहड़ मनोरंजन का साधन बन गए हैं। इन पर लगाम लगाने के लिए एक नियंत्रक संस्था का निर्माण किया जाना चाहिए।

न्यूज चैनलों को लेकर यह चिंताएं नवंबर में यहां आयोजित एक सेमिनार में मीडिया और समाज के प्रतिनिधियों ने व्यक्त कीं। उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि डॉ. विजय अग्रवाल ने कहा कि मीडिया में बहुत कुछ गलत चल रहा है, लेकिन आम लोग इससे वाकिफ नहीं हैं। टीवी चैनलों पर जो स्टिंग ऑपरेशन किए जा रहे हैं, उनकी सच्चाई जानने के लिए भी स्टिंग ऑपरेशन की जरूरत है। शिक्षाविद् डॉ. विनोद रैना ने कहा कि मीडिया समाज का हिस्सा है और उसका दिशा से भ्रमित होना समाज के लिए बड़ी समस्या बन गया है। उन्होंने कहा कि दूरदर्शन की खबरों को बोर कहा जाता है, लेकिन यह खबरें वास्तविकता के करीब होती हैं, जबकि प्राइवेट न्यूज चैनलों पर जो दिखाया जा रहा है वह न्यज है ही नहीं। नवदुनिया स्थानीय संपादक गिरीश उपाध्याय ने टीवी न्यूज असीमित मनोरंजन विषय पर अपने विचार रखते हुए टीवी चैनलों में बढ़ रही असंवेदनशीलता पर चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि टीवी चैनल राज ठाकरे, राखी सावंत और राजू श्रीवास्तव पर केंद्रित हो चल रहे हैं। वे चैनल समाज को जागरूक करने के बजाय अंधविश्वास को बढ़ावा दे रहे हैं। इस मानसिकता से मुक्ति की जरूरत है। प्रथम सत्र की वक्ता आरती पांडे ने मीडिया की खबरिया नीति पर सवाल उठाते हुए कहा कि मीडिया वास्तविक मुद्दों से जनता का ध्यान हटा रहा है। ऐश्वर्या राय के लहंगे पर तो खबर दी जाती है, लेकिन गरीबी के कारण आत्महत्या कर रहे किसानों की खबर नहीं दिखाई जाती। टीवी न्यूज अपनी विश्वसनीयता खो रहे हैं। विषय पर अपनी राय रखते हुए वरिष्ठ पत्रकार लज्जाशंकर हरदेनिया ने कहा कि मीडिया पूरी तरह बाजारवाद के शिकंजे में है। इससे निकलने के लिए बड़ी लड़ाई की आवश्यकता है। इसके लिए एक नियंत्रक संस्था का होना भी आवश्यक है, जिससे इस पर नियंत्रण रखा जा सके।

नैतिक मूल्यों पर नियंत्रण रखे मीडिया

भोपाल। प्रजातंत्र की रक्षा के लिए मीडिया का स्वतंत्र होना जरूरी है। वर्तमान में मीडिया शक्तिशाली बनकर उभरा है, लेकिन उसे अपनी शक्ति को यथावत रखने के लिए नैतिक मूल्यों पर नियंत्रण बनाए रखना होगा। मीडिया को खुद तय करना होगा कि उसकी सीमा कहां तक है। यह विचार बरकतउल्ला विवि के समाजशास्त्र विभाग में नवंबर में आयोजित एक परिचर्चा में सामने आए। परिचर्चा का विषय था- भारतीय प्रजातंत्र में मीडिया की भूमिका। कार्यक्रम में भाग ले रहे विद्यार्थियों का कहना था कि वर्तमान में मीडिया अपनी मर्जी का मालिक बन गया है। यही कारण है कि आजकल अधिकतर मीडिया समूह खबरों को ज्यादातर नकारात्मक रूप से पेश कर रहे हैं। अध्यक्षता कर रहे कुलपति भूपाल सिंह ने कहा कि देश सालों तक गुलामी के बाद अब नए सिरे से खड़ा हो रहा है। ऐसी स्थिति में कई समस्याएं सामने आती हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए उनसे दूर भागने के बजाय उनसे लड़ने की जरूरत है और यही काम मीडिया कर रहा है। *(नव दुनिया से)*

प्रसारण के क्षेत्र में पार्टियों, धार्मिक निकायों के प्रवेश पर ट्राई का इनकार

नई दिल्ली। भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण ने प्रसारण के क्षेत्र में राजनीतिक दलों, धार्मिक निकायों तथा सार्वजनिक संगठनों के प्रवेश का प्रस्ताव 12 नवंबर को खारिज कर दिया और सरकार को सलाह दी कि वह निजी प्रसारकों के लिए भी एयरटाइम का कुछ समय जनसेवक प्रसारणों हेतु छोड़ना अनिवार्य कर दे। वैसे चुनावी प्रक्रिया के दौरान जनता तक सूचना के स्वतंत्र प्रवाह की खातिर ट्राई ने सिफारिश की कि संसद एवं विधानसभाओं के चुनावों के प्रचार अभियान के दौरान सभी प्रसारण चैनल मान्यता प्राप्त राजनीतिक पार्टियों को उचित पहुंच मुहैया कराएं।

प्राधिकरण ने यहां जारी अपनी सिफारिशों में कहा है कि भारत सरकार तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय इसके लिए चुनाव आयोग से राय मशविरा कर इस संबंध में उचित दिशा-निर्देश बना सकता है। वैसे उसने धार्मिक संगठनों को अपना प्रसारण केंद्र तथा टेले पोर्ट बनाने की अनुमति देने के प्रस्ताव पर साफ मना कर दिया है और कहा कि उसका यह फैसला संविधान के धर्मनिरपेक्ष ढांचे के अनुरूप है तथा प्रसारण पर प्रस्तावित नए विधेयक में ऐसा प्रावधान शामिल किया जाना चाहिए। ट्राई ने स्पष्ट किया है कि प्रस्ताव पर उसके इनकार को प्रसारण चैनलों के कार्यक्रम में धार्मिक सारवस्तु के खिलाफ रोक नहीं माना जाना चाहिए, लेकिन यह सारवस्तु सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित कार्यक्रम संहिता के मानदंड के अनुरूप होनी चाहिए।

प्राधिकरण ने कहा है कि अगर पहले किसी धार्मिक निकाय को टेलीविजन चैनल चलाने की अनुमति दी जा चुकी है तो ऐसे निकाय को तीन चार साल के भीतर प्रसारण सेवा से बाहर निकलने का उचित रास्ता दिया जाना चाहिए। उसने जनसेवा प्रसारण के कार्यक्रमों की सारवस्तु के निर्धारण की प्रक्रिया में प्रसार भारती, दृश्य-श्रव्य प्रचार निदेशालय, राज्य सरकारों एवं उनके संगठनों के साथ-साथ निजी प्रसारकों, गैर सरकारी संगठनों तथा सामाजिक समूहों के व्यक्तियों को भी शामिल किया जाना चाहिए और सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय इसके लिए एक नियमित निकाय भी बना सकता है।

(एजेंसी)

पेज एक से जारी...

जबकि वर्तमान दूसरे चक्र में 191.2 हो गई। यानी मामूली दशमलव प्रतिशत बढ़ी ही। गिरावट के सकल समय में इतनी बढ़त भी अलग से कही जाने योग्य मानी जानी चाहिए।

हिंदी पत्रिकाओं के बारे में गिरावट के संकेत जरूर ध्यान देने योग्य हैं। पहले चक्र में टॉप टेन पत्रिकाओं की सकल पाठक संख्या 68.5 मिलियन बताई गई है, जबकि दूसरे चक्र में यह सकल संख्या 59.2 मिलियन बताई गई है। यह गिरावट का संकेत है। इन टॉप टेन पत्रिकाओं में हिंदी, अंग्रेजी, तमिल, मलयालम आदि की पत्रिकाएं शामिल की गई हैं। यह आकलन उनके सकल सर्कुलेशन और प्रति कॉपी पर औसत पाठक संख्या के आधार पर किया गया है। सर्वे के सच में सच का इतना दाना जरूर लगता है कि प्रिंट मीडिया अपनी बढ़त की गति को खो रहा है। अंग्रेजी में कुल गिरावट के संकेत आ रहे हैं और हिंदी में अखबारों में गिरावट के संकेत यदि नहीं हैं तो बढ़त के भी बहुत मजबूत संकेत नहीं हैं, जबकि पत्रिकाओं में गिरावट साफ देखी जा सकती है। प्रिंट मीडिया में इस सांकेतिक गिरावट के कारण कई हो सकते हैं। इनमें सबसे बड़ा कारण यह माना जा सकता है कि नए पाठकवर्ग में प्रिंट के प्रति आकर्षण घट रहा है। प्रिंट में गिरावट के और भी कई कारण हो सकते हैं। नई पीढ़ी टिककर बैठकर पढ़ने वाली नहीं है। उसके पास एक पत्रिका को पढ़ने का समय नहीं है। वह पल्लवग्राही है और सुर्खियों से काम चलाती है, इसलिए पत्रिकाएं उसका मुख्य माध्यम नहीं है। इसका कारण उसका देशकाल है, जिसमें डिपॉलिटिसाइजेशन या अराजनीतिकरण की प्रक्रिया ज्यादा वेगवान है। पूंजीवाद के नए लूट समय में ठहरकर सोच-विचार या चित्त के ठहराव के अनुकूल वातावरण नहीं बचा है। एक कारण युवा वर्ग के बीच इंटरनेट और ब्लॉगिंग के चलन का बढ़ना है। इंटरनेट पर उपलब्ध अखबार, पत्रिकाएं थोड़ा-बहुत पढ़ी जाती हैं। जाहिर है तब प्रिंट की नहीं पढ़ी जातीं और ब्लॉगिंग के चस्के के बाद युवावर्ग परंपरागत यानी ठहरकर पढ़ने वाला शौकिया पाठक नहीं बना रहता है क्योंकि वह साइबर स्पेस के संचार में खुद का एक संचारकर्ता बन जाता है, खुद एक माध्यम बन जाता है। एक और कारण यह है कि यह समय अनंत जटिलताएं लिए है। सरलताएं बची नहीं हैं। इकहरे विचार, इकहरे उपदेश और इकहरी सूचनाएं काम की नहीं लगतीं। सूचना, विचार और काम की बातें सब अनेक ज्ञान-अनुशासनों पर अंतर्निर्भर होने लगी हैं। जिंदगी इकहरेपन को पसंद नहीं करती।

प्रिंट की ओर से मन उचाट करने वाला एक बड़ा कारण टीवी की कवरेज और रेडियो, टीवी, इंटरनेट से कनेक्टेड मोबाइल फोन के नए संस्करण हैं, जिनमें खबरें और विजुअल्स लगातार रहते हैं। राजनीति और अर्थनीति के ठहराव के साथ पाठकों में ठहराव भी एक स्वाभाविक बात है। समाज की अर्थनीति और राजनीति में ठहराव या मंदी का वातावरण पढ़ने की आदत को प्रभावित करते हैं। मीडिया का इतिहास गवाह है कि नए पाठकों का निर्माण हमेशा रेडिकल राजनीति के विकास ने किया है। रेडिकल पॉलिटिक्स के अभाव में पाठकता में गिरावटें अक्सर दर्ज की गई हैं। समाज में सूचना की ललक उसकी खपत और सूचनाप्रेरित व्यवहार बढ़त पर है, इसलिए पाठक संख्या के उक्त आंकड़े सिर्फ तात्कालिक ठहराव के संकेत हैं। अपने समाज में अभी आगे बढ़ने की इच्छा मौजूद है। वही अपने मीडिया को ठहराव से मुक्ति देगा। *(राष्ट्रीय सहारा से)*

मूल्यानुगत मीडिया

अध्यक्ष
डॉ. संजीव भानावत

संपादक*
प्रो. कमल दीक्षित

संपादक मंडल
डॉ. शशिकांत शुक्ल
अध्यक्ष, जनसंपर्क, विज्ञापन एवं प्रबंधन अध्ययन केंद्र
मा. ला. च. रा. पत्रकारिता एवं संचार विवि, भोपाल
प्रो. प्रदीप माथुर
पूर्व कार्यकारी निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, दिल्ली
श्री प्रकाश हिन्दुस्तानी
ब्यूरो प्रमुख, सहारा समय, इंदौर
सुधांशु मिश्र
सहायक संपादक, मीडिया मीमांसा, भोपाल

संपादकीय टीम
गोविंद अग्निहोत्री
मुख्य उप संपादक
मुकेश मिश्रा
ब्यूरो प्रमुख, लोकमत समाचार, इंदौर
मुनीष जोशी
आकाशवाणी संवाददाता, कोटा (राजस्थान)
बीके रामस्वरूप मल
फोटो न्यूज संपादक, माउंट आबू
प्रो. केसी मौली
मा. ला. च. रा. पत्रकारिता एवं संचार विवि, भोपाल

प्रकाशक
मनीष श्रीवास्तव
ई-9, फिरोज गाँधी प्रेस परिसर, इंदौर-3U
संपादकीय संपर्क
बी-9, फिरोज गाँधी प्रेस परिसर, इंदौर - 452003
मोबा. 9826544363, 9425058483
प्रसार, विज्ञापन एवं व्यवस्था- बी-9 फिरोज गाँधी प्रेस परिसर, इंदौर- 452003
मुद्रण
स्पूतनिक प्रेस, 166, रविंद्रनाथ टैगोर मार्ग
इंदौर-452001
वार्षिक मूल्य : 100 रुपए, एक प्रति 10 रुपए
(संपादन एवं व्यवस्था संबंधी सभी सहयोग स्वैच्छिक व अवैतनिक)
* पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के लिए उत्तरदायी।

आमंत्रण

मूल्यानुगत मीडिया सामाजिक मूल्यों के प्रति मीडिया की प्रतिबद्धता को लेकर आपके समक्ष पेश किया गया है। मीडिया जगत में आपका सम्मानीय स्थान है। अतः मीडिया में मूल्यों की स्थिति पर आपकी चिंता, सुझाव, सुविचार, मीडिया के विकास के लिए उपयोगी होंगे। आपके आसपास घटित मूल्यपरक गतिविधियों, समाचारों, कार्यशालाओं की लिखित प्रस्तुति का भी ***मूल्यानुगत मीडिया*** में स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया तथा मार्गदर्शन की अपेक्षा

-संपादक

मीडिया के मन पर समय के घाव

□ पुण्य प्रसून वाजपेयी

छह जून 1981 को बिहार की बागमती नदी में समस्तीपुर-बनमंखी पैसेंजर गाड़ी के सात डिब्बे टूटकर गिर गए। उस समय दिनमान के संपादक रघुवीर सहाय ने अपने संपादकीय में लिखा, 'रेल दुर्घटना की खबर ने उन्हें छोड़ किसी को विचलित नहीं किया, जिनके अपने सगे उस गाड़ी में थे।' संपादक के नाम एक ऐसे पत्र को दिनमान की कवर स्टोरी का हिस्सा बनाया गया, जिसमें इस घटना को एक भयावह राष्ट्रीय विपत्ति बताया गया था। यह वाकया इसलिए याद आ गया कि दो महीने पहले बिहार में ही एक नदी ने जब अपनी धारा बदली तो सात जिलों के दो लाख लोगों को लील लिया, लेकिन किसी अखबार-पत्रिका या न्यूज चैनल की कवर या मुख्य स्टोरी यह तब तक नहीं बन पाई, जब तक प्रधानमंत्री ने इसे राष्ट्रीय विपदा नहीं करार दिया। दिल्ली के किसी समाचार-पत्र को पढ़कर बिहार के हालात की जानकारी किसी को नहीं मिल सकती थी। न्यूज चैनलों ने भी एक हफ्ते तक प्राइम टाइम में इस खबर को छूने की हिम्मत नहीं दिखाई। उन्हें इसकी टीआरपी नहीं मिलने का डर था। यानी 1981 के बाद देश के विकास और मीडिया के आधुनिकीकरण के 27 सालों में हर शख्स अकेला होता जा रहा है। इतने सालों में मीडिया मुनाफे के मीडिया में बदल गया।

दरअसल, खुले बाजार ने महज मुनाफे की थ्योरी को आर्थिक तौर पर ही नहीं परोसा, बल्कि राजनीति और मीडिया से एक साथ सरोकार की भाषा छुड़वाने की स्थितियां बना दी। इस दौरान मीडिया सबसे रईस होकर उभरा तो उसके भीतर सत्ता के करीब होने की ललक भी बढ़ी। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि बाजार व्यवस्था का प्रभाव महज बिजनेस के रूप में ही मीडिया पर पड़ा। लोकतंत्र का जो पाठ संसदीय राजनीति ने नीतियों के जरिए देश के सामने रखा, उसमें निजी शब्द हावी होता चला गया। खासकर निजी का मुनाफा ही निजी की सुरक्षा हो गई। सत्ता के सामने अपने हक की लड़ाई के मायने तक बदलने लगे। जब आम आदमी का विकास एक-दूसरे के हक को छीनकर परिभाषित होने लगा तो जिसका पेट भरा था या जो मुनाफे के पायदान पर सबसे ऊपर खड़ा था, उसने अपने आपको लोगों से काटकर सत्ता के अनुकूल करना ही बेहतर समझा। मीडिया भी नीतिगत तौर पर सत्ता के करीब ही हुआ क्योंकि लोकतंत्र की परिभाषा बदली तो चौथे स्तंभ को लेकर भी नई व्याख्या सरकार के नजरिए से नजर मिलाकर चलने की हो गई। मीडिया को आर्थिक तौर पर चलाते हुए मुनाफे को बनाना पूरी तरह सत्ता पर टिका, क्योंकि मीडिया इस डेढ़ दशक में सरोकार के सूचना तंत्र से ज्यादा सूचना तंत्र का बिजनेस हो गया।

इस दौर में जिस तरह की खबरें परोसी जा रही हैं या जिस तरह से उन्हें परोसा जा रहा है, वह निजी मुनाफे और सत्तानुकूल बने रहने के सच से हटकर कतई नहीं है। राष्ट्र की संपत्ति से लेकर औद्योगिक और सामरिक समृद्धि तक में देश के लोगों और संस्थाओं की भागीदारी गायब हो रही है। मीडिया भी इससे अछूता नहीं है। एफडीआई का कितना फीसदी मीडिया के विस्तार में लगाया जा सकता है, यह सरकार और मीडिया के बीच समझौते का नया पहलू है। शायद इसीलिए सांप्रदायिक राजनीति के आसरे सत्ता चमकाने के तथ्यों को नजरंदाज कर बाजार की शानो-शौकत से लेकर हंसी-ठठ्ठा का खेल अखबारों से लेकर न्यूज चैनलों में नजर आता है। उसमें यह कहने से गुरेज नहीं किया जा सकता कि मीडिया के मन में समाज और राष्ट्र की वह कल्पना मर चुकी है, जिसमें यह संभव हो कि सत्ता के संवेदनहीन होने पर उसकी खबर समूचे देश को सचेत कर सके।

लेखक टीवी पत्रकार हैं।
(दैनिक भास्कर से)

समाज की धड़कनों को सुने हमारा प्रेस

□ उदय प्रकाश

आजादी की लड़ाई के दौर में और उसके बाद भी प्रेस की भूमिका लोकतंत्र और समाज के पहरेदार की थी। अखबार लोकतंत्र का चौथा स्तंभ था और मिशन भी। तमाम परिवर्तनों और पतन के बावजूद 80 के दशक तक यह स्थिति कायम रही। लेकिन उसके बाद ग्लोबलाइजेशन, उदारीकरण और मुक्त अर्थव्यवस्था ने पूरी दुनिया के पैमाने पर अखबारों की भूमिका ही बदल डाली। एक ऐसे दौर में, जहां सब कुछ बाजार और सत्ता की शक्तियों से संचालित है, अखबार उससे अछूते कैसे रह सकते हैं। अब अखबार कोई मिशन नहीं रह गए हैं, बल्कि साम्राज्यवाद ने जिस संस्कृति का प्रसार किया है, उसके वाहक बन चुके हैं।

पूरी दुनिया में बाजार के फैलने के साथ अचानक मीडिया में एक बाढ़-सी आ गई। भारी संख्या में अखबार, न्यूज चैनल और पत्रिकाओं की शुरुआत हुई। रातों-रात मीडिया की तस्वीर ही बदल गई। मीडिया में यह विस्फोट किसी बड़े सामाजिक बदलाव या जरूरत का नतीजा नहीं था। यह बदलते हुए समय और बाजार की आवश्यकता थी। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में प्रेस ने अपने सामाजिक सरोकार तो खोए ही, साथ ही अपनी विश्वसनीयता भी खो दी। 80 के दशक में जब दूरदर्शन पर नुक्कड़, तमस जैसे धारावाहिक प्रसारित होते थे तो लगता था कि बड़े पैमाने पर एक अर्थपूर्ण विचार कला के माध्यम से लाखों लोगों तक पहुंचाया जा रहा है। लेकिन आज स्थितियां पूरी तरह बदल चुकी हैं।

आज इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया के बीच संबंध आदान-प्रदान का नहीं, बल्कि विरोध और प्रतिस्पर्द्धा का है। आज टीवी पर कोई खबर दिखाई जाती है, तो उस पर भी राजनीतिक स्वार्थ हावी होते हैं। कभी उनका राजनीति और दलवाद निरपेक्ष विश्लेषण नहीं हो पाता है। मालेगांव वाली घटना इसका सबसे ताजातरीन उदाहरण है और यह स्थिति सिर्फ हिंदुस्तान में नहीं है। पूरी दुनिया में जो साम्राज्यवादी खेल चल रहा है, प्रेस उस खेल का सबसे सजग और तत्पर कारिंदा है। अखबारों में अब संपादकों की भी पहले जैसी भूमिका नहीं रह गई है। उनसे बौद्धिक योग्यता और विचारशीलता की उम्मीद नहीं की जाती। वे बाजार के समीकरणों से वाकिफ हों, बस इतना ही काफी है।

अखबार किसी भी समाज का आईना होते हैं। अपने युग के दुख, उसके कंपन, उसके यथार्थ की सही और पारदर्शी तस्वीर दिखाना उनकी नैतिक जिम्मेदारी है। अगर 1857 के गदर के समय के अखबार उठाकर देखें तो उनमें उस क्रांति की आहट नजर आती है। ऐसा नहीं था कि एक दिन अचानक लोग उठे और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह कर दिया। वर्षों से समाज में इस विद्रोह की सुगबुगाहट थी और तत्कालीन अखबारों में इसे महसूस किया जा सकता था। ऐसा इसलिए हो सका क्योंकि वे अखबार अपने समय का आईना थे, अपने युग की आवाज थे। उस समय, जब अंग्रेजी अखबारों को लगता था कि हिंदुस्तान के लिए अंग्रेज कोई बहुत बड़ी चुनौती नहीं हैं, भाषाई अखबारों ने इसे गलत साबित किया। उन्होंने जन जागरण का बीड़ा उठाया। इतिहास में प्रेस की ऐसी अभूतपूर्व सामाजिक भूमिका की मिसालें आज भी उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। लेकिन आज हमारे अखबार अपने समय और समाज की धड़कनों को नहीं पढ़ पा रहे हैं।

बाजार के बदलते समीकरण आने वाले समय में प्रेस पर निश्चित ही असर डालेंगे, लेकिन अगर अखबारों को अपनी अर्थवत्ता बनाए रखनी है तो उन्हें अपनी जिम्मेदारी को समझना होगा। अखबारों का बुनियादी काम सूचना देना है। उस सूचना के साथ काट-छांट, दुराव-छिपाव और पूर्वाग्रह नहीं होने चाहिए। सीधी, स्पष्ट और जनता के हक की बात होनी चाहिए। इसे बदलना किसी व्यक्ति विशेष के हाथ में नहीं है। समय इसे खुद-ब-खुद बदलेगा, लेकिन अगर इतिहास के पन्नों पर प्रेस का नाम हमेशा सम्मान व गौरव के साथ अंकित होना है तो उसे इस बारे में गंभीरता से विचार करना होगा।

-लेखक जाने-माने साहित्यकार हैं।
(दैनिक भास्कर से)

● संपादकीय ● मोल-तोल की हद से पार गई खबर

मप्र, छत्तीसगढ़, दिल्ली, राजस्थान तथा मिजोरम में विधानसभा के चुनाव संपन्न हुए। 2008 समाप्त होने के पूर्व इन सभी राज्यों में चुने हुए प्रतिनिधियों ने विधानसभा तथा सरकार का गठन कर लिया। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली तथा राजस्थान में मीडिया अपने पाठकों को चुनाव के निर्णय, चुनाव की तारीख तथा मतदाताओं की संख्या जैसी सूचनाओं को जितना सच बताने में कामयाब रहा है, उतना कौन जीतेगा, कैसे हो रहा है चुनाव आदि जानकारियां देने में कामयाब नहीं रहा। ऐसा संभवत: कभी हो भी नहीं सकता है। अनुमान और सच में अंतर तो रहेगा। कोई भी प्रत्याशी या मतदाता अपना मन और अपनी कामयाबी के पूर्ण सच को शायद ही बता पाए। इसलिए मीडिया की सफलता या असफलता का यह ऐसा पैमाना नहीं हो सकता जो उसकी उपयोगिता को सार्थक या निरर्थक बताए। हां, इस लुकाछिपी के खेल को कितना समझ पाया है मीडिया, उसके सामर्थ्य और कौशल का यह पैमाना जरूर बना रहेगा।

इस चुनाव में भी पहले की ही तरह मीडिया का ज्यादातर स्वर, जो हो रहा है, उसकी रनिंग कमेंट्री पर ही केंद्रित रहा है। कौन, कहां, कैसा प्रचार कर रहा है, किसकी जीत होगी। इस संबंध में कौन क्या कर रहा है, हवा किस तरफ बह रही है या किसके प्रचार में जोर है या किस जाति या वर्ग के कितने वोट हैं, यही सत्य या अर्धसत्य उसके कौशल और समझ का नमूना बने रहे। 1952 से अब तक 12 से 15 और कहीं-कहीं 20 से अधिक चुनाव प्रसंग हो चुके हैं। इतने वर्षों में मीडिया लोगों का मार्गदर्शक बनने के बजाय लगातार सौदेबाजी या प्रचारबाजी की तरफ ज्यादा मुड़ता रहा है। वह चुनाव के दिनों को अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करने का अवसर अधिक मानता रहा है। पाठकों या दर्शकों को केंद्र में रखकर सोचने के बजाय, सत्ता के संघर्ष का हिस्सा बनने की कोशिश ज्यादा की जाती रही है। यह प्रवृत्ति इस हद तक बढ़ी है कि इस चुनाव में उसने शायद अपनी वह सीमाएं तोड़ दी हैं, जिसकी सच्चाई समाने आने पर मीडिया की भूमिका अपनी ही परंपरा के विपरीत खड़ी दिखाई देती है। दो-तीन प्रसंगों से इसे समझें।

मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा में एक दैनिक समाचारपत्र कार्यालय में संपादक तथा प्रबंधक गंभीरता से चुनाव के दो माह पूर्व यह चर्चा कर रहे थे कि उनके मालिक-संपादक ने चुनाव के दौरान प्रत्याशियों के प्रचार के लिए, अनुदान/दान या प्रचार शुल्क/विज्ञापन, कुछ भी नाम दे दें, का जो लक्ष्य तय कर दिया है, उसे वे कैसे पूरा करेंगे। उनकी ही सूचना के अनुसार लगभग सभी पत्रकारों को ऐसे प्रत्यक्ष या परोक्ष लक्ष्य मिले थे। इसकी उपलब्धता ही समाचारों का आकार तथा स्वर तय करे- ऐसा निर्देश था। एक बड़े दल के मीडिया प्रबंधन में परोक्ष रूप से शामिल एक पुराने पत्रकार ने चुनाव के बाद इस तरह की बातों को असत्य न बताते हुए कहा कि पत्रकार निजी तथा संस्थागत संदर्भों में, चुनाव के चलते तथा जीतने के बाद भी धन लाभ के लिए प्रत्याशी या प्रबंधकों के पास खुलकर मांग रखने में अब हिचकते नहीं हैं।

एक प्रत्याशी ने कबूल किया कि उनके पक्ष में प्रचार के लिए धनराशि की मांग की गई थी। पर उन्होंने विनम्रता तथा दृढ़ता से सभी के हाथ जोड़ लिए। वे चुनाव में हार गए हैं। पता नहीं पत्रकारों के असहयोग से या प्रतिस्पर्धी दल के धन-प्रबंधन ने उन्हें हराने में मदद की है। बैरागढ़ में एक प्रत्याशी ने अपने मित्र एक अनुभवी पत्रकार से चुनाव के दिनों में ही इस 'धन दो या भुगतो' जैसी धमकी भरी मांग से घबराकर सलाह मांगी। मित्र पत्रकार की सलाह पर वे कायम रहे और परिणाम उनके पक्ष में रहा। आश्चर्य उन्हें अब तक है कि जो मीडिया उन्हें दूसरे से पांचवें स्थान पर अंत तक मानता रहा, इसलिए भी कि उन्होंने उनकी शर्तें मान्य नहीं की थीं वह उन्हें हरा क्यों नहीं पाया। इस तरह के किस्से भोपाल, दिल्ली, रायपुर या जयपुर में ज्यादा या कम, लेकिन सर्वत्र सुनाई दिए हैं। यह इतने मुखर और स्पष्ट स्वर हैं कि जिसे अब सुनते ही कोई अविश्वसनीय नहीं मानता।

चुनाव की खबर के इस मोल-तोल व्यवहार की किस तरह व्याख्या की जाये या इसे नई चलन मानकर स्वाभाविक विकास की तरह देखकर, अनदेखा कर दिया जाए अथवा इसे मीडिया की भूमिका और मूल्य के साथ जोड़कर विवेचना की जाए अथवा की जानी चाहिए। इस दृष्टि से इसे चर्चा में लाने का यह उपक्रम है। इसलिए भी कि मीडिया के संबंध में विचार करने वालों का कोई मुखर स्वर इस संबंध में चुनाव के दौरान या बाद में कहीं भी सुनने या पढ़ने में नहीं आया। संभव है, कहीं कोई बोला हो या किसी ने लिखा भी हो पर वह गूंज नहीं बन सका। क्या सचमुच ही यह सब गूंज बनने जैसा नहीं है? या हम मान लें कि 'पेड न्यूज' जैसी कोई परंपरा को समाचार के अर्थ में स्वीकार कर लिया गया है। इसके चलते हर खबर के संबंध में स्थानीय स्तर से दिल्ली तक क्या हर खबर को बिकने योग्य में या बिक चुकी जैसे विभाजन में बांटकर देखें।

हमें अन्य वर्गों की तरह मीडिया की इस स्थिति में अब अपने स्वाभिमान को रखने से आहत नहीं होना चाहिए- कम से कम पत्रकार को। इस स्थिति पर दो कथन याद आते हैं। श्री एनके सिंह ने, जो दिल्ली में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में एक चैनल से संबद्ध हैं, एक संगोष्ठी में मूल्य और भूमिका के संदर्भ में कहा था कि यदि पत्रकार असामान्य सुविधा और वेतन के बड़े पैकेज मांगते हैं, तो वे व्यवसायी-प्रबंधक के मूल्य-समझौते की आलोचना किस नैतिक मानदंड पर करेंगे? यह 2008 की बात है। पर महात्मा गांधी ने 1920 और 1938 में पत्रकारिता के उद्देश्य बताते हुए कहा था कि पत्रकार समय आने पर 'मुसीबत मोल लेकर' भी सच को बताएं। इन दोनों कथनों में समय का अंतराल तो है, पर नीति या मूल्य का अंतराल नहीं। तब क्या इस पर हम सब मिलकर नहीं सोचें?

-प्रो. कमल दीक्षित

मंदिर में होती है अखबारों की पूजा

मंदिरों में आमतौर पर देवी-देवताओं की पूजा होती है। मगर छत्तीसगढ़ में एक ऐसा मंदिर है, जहां अखबार की पूजा होती है। मंदिर में भगवान की जगह ढेर सारे अखबार रखे हुए हैं। ग्रामीणों का कहना है कि देश आजाद होने की खबर उन्हें अखबारों से मिली। यही वजह है कि वे भगवान के बजाय अखबारों की पूजा करने लगे। ग्रामीणों का मानना है कि अखबार से ज्ञान और ज्ञान से समृद्धि मिलती है। धमतरी जिले के नगर ब्लॉक अंतर्गत आदिवासी बाहुल्य गांव सटियारा के इस अनोखे मंदिर में 15 अगस्त और 26 जनवरी जैसे राष्ट्रीय पर्वों पर पूजा-पाठ के साथ ही बड़ा जलसा होता है। पूजा विधिवत होती है। लोग अखबारों को धूप, अगरबत्ती दिखाते हैं फिर सिंदूर लगाकर आरती उतारते हैं। इसके बाद प्रसाद का वितरण करते हैं। पूजा के बाद सामूहिक भोज होता है।

गांव के बुजुर्गों का कहना है कि देश को आजाद कराने में महात्मा गांधी और अखबारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। यही कारण है कि ग्रामीणों में गांधीजी के प्रति भी अटूट आस्था है। घर-घर में गांधीजी की फोटो लगी है। सन् 47 में जब मंदिर बना तब सटियारा गांव आबाद था। बाद में गंगरैल डेम बनने के बाद गांव डूब गया तो वहां के वाशिंदे दस किलोमीटर दूर पूरी गांव चले गए। मगर आस्था कम नहीं हुई। चारों ओर पानी होने की वजह से मंदिर तक पहुंचने का एकमात्र साधन नाव है। *(मीडिया मीमांसा से)*

स्वस्थ पत्रकारिता की सबसे बड़ी शर्त

मानवीय सरोकार और मानवीय मूल्य

पं. कुंजीलाल दुबे स्मृति व्याख्यानमाला 2008- गत अंक से आगे...

-आलोक मेहता

संसद में विपक्षी दल के नेता को तो अपनी पार्टी की प्रतिबद्धता और राजनीतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सिर्फ सरकार की आलोचना करनी होती है। इसके अपवाद बहुत कम होते हैं। उसका दोष देखने की स्वीकार्य भूमिका है। लेकिन प्रेस से ऐसी भूमिका की उम्मीद स्वस्थ परंपरा नहीं होगी।

एक उदाहरण दिया जा सकता है, यदि कोई विपक्ष की तरह सोचता है तो उसके घर के सामने पड़े कूड़े के ढेर को हटाने की जिम्मेदारी सरकार पर है। यदि कोई बौद्धिक किस्म का जागरूक नागरिक है तो कूड़े को हटाने की जिम्मेदारी अखबार की है। अर्थात् उस ढेर को एक मुद्दा बनाए और नैतिक तथा नागरिक प्रश्न खड़ा करके उसे हटवाए क्योंकि वह मानता है कि अखबार लोगों तक खबर भी पहुंचाता है और विचार भी। अखबार निजी पसंद का दायरा भी पूरा करता है और सामाजिक दायित्व के वहन की अपेक्षा भी उससे की जाती है। निजी शौक का समाधान पाठक उसमें ढूंढ़ता है और दुनिया को उसकी सुख-सुविधा और इच्छा के अनुसार जीने की भूमिका अखबार निभाए, यह अपेक्षा भी उसकी रहती है।

अपनी इस दोहरी संस्थागत भूमिका के कारण वह छोटे और बड़े शासक और शासित, व्यक्ति और राज्य, वर्ग और संप्रदाय ऐसी अनेक भिन्नताएं, विरोधियों और विपरीत दिशाओं के निरंतर प्रवाहों के बीच संवाद की स्थिति पैदा करता है। लेकिन इस बात की चिंता बहुत कम लोग करते हैं कि संवाद का यह सुलभ माध्यम अपने अस्तित्व के लिए किन-किन स्तरों पर कितनी-कितनी लड़ाइयां लड़ता है। कितने सारे दबावों के बीच सच को सच की तरह रखने का जोखिम उठाता है।

एक बेहतर अखबार या पत्रिका, जिसका अपने समय के सरोकारों को साथ रिश्ता होता है, अपने आपमें जनता का एक अघोषित मंच बन जाता है। वह कोशिश करता है कि आलोचनाओं को जनता के दृष्टिकोण से रख सके। उस जनता के दृष्टिकोण को जिसके पास सैद्धांतिक तौर पर अधिकार तो हैं, लेकिन व्यावहारिक धरातल पर उसे उन अधिकारों के उपयोग की अनुकूलता नहीं देता।

अभिव्यक्ति की आजादी का उपयोग नैतिकता और संतुलन की परिधियों में होना आवश्यक है। सबको जानने और परखने के अधिकार का जितना रिश्ता कानून से है, उससे कहीं ज्यादा रिश्ता मानवीय सरोकारों से होता है। एक स्वस्थ पत्रकारिता की सबसे बड़ी शर्त मानवीय सरोकार और मानवीय मूल्य हैं। अखबार अपने दृष्टिकोण में विरोधी हो सकता है, लेकिन हमेशा सरकार या व्यवस्था के सामने खड़ा विपक्ष नहीं। उसे नैतिक और मानवीय मूल्य के अधिकारों के मुद्दों पर सरकार के साथ पूरक भूमिका निभानी होती है। संसद में विपक्षी दल के नेता को तो अपनी पार्टी की प्रतिबद्धता और राजनीतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सिर्फ सरकार की आलोचना करनी होती है। इसके अपवाद बहुत कम होते हैं। उसका दोष देखने की स्वीकार्य भूमिका है। लेकिन प्रेस से ऐसी भूमिका की उम्मीद स्वस्थ परंपरा नहीं होगी। प्रेस की प्राथमिक जिम्मेदारी है कि वह सच्चाई को उसके समूचेपन के साथ पठनीय बनाकर पाठकों तक पहुंचाए। उसके लिए पक्ष या विपक्ष का भेद नहीं होना चाहिए। उसे न सत्ता की नाराजगी की परवाह होती है और न ही विपक्ष के द्वारा पीठ थपथपाए जाने की।

कुछ वर्ष पहले लंदन टाइम्स के पूर्व संपादक विलियम रीज मोग से दिल्ली में मुझे लंबी बातचीत का अवसर मिला था। उन्होंने कई दिलचस्प तथ्यों की जानकारी दी थी। वह स्वयं प्रेस शिकायत आयोग से जुड़े रहे थे और उनका मानना था कि स्वैच्छिक नियंत्रण प्रणाली प्रेस को संयमित रखने में अधिक प्रभावी भूमिका नहीं निभा पा रही है। सख्ती या सेंसरशिप इसका विकल्प नहीं हो सकता। फ्रांस में इसके नियंत्रण के प्रयास किए गए, लेकिन वहां कई नई समस्याएं सामने आईं। बेहतर यही है कि प्रेस आत्मानुशासन का ध्यान रखे। रीज मोग के अनुसार ब्रिटेन में भी भारत की तरह शासकीय गोपनीयता कानून है, लेकिन वहां सरकार इसका इस्तेमाल करते हुए अक्सर हिचकिचाती है। जहां तक सार्वजनिक जीवन से जुड़ी हस्तियों के निजी जीवन को टटोलने के अधिकार का सवाल है, ब्रिटिश प्रेस और समाज की यह मान्यता है कि जो भी सार्वजनिक जीवन में है उसका निजी जीवन भी उसके सार्वजनिक जीवन का एक अंग होता है। दोनों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को इस बात के लिए तैयार रहना होगा कि उनके निजी जीवन में ताक-झांक हो सकती है। जैसे किसी राष्ट्राध्यक्ष के अनैतिक संबंधों की बात सामने आने पर अखबारों में छपना कतई गलत नहीं है। ऐसे अनैतिक संबंधों को उजागर होने पर ब्रिटेन में कई नेताओं को अपने पदों से इस्तीफे देने पड़े। दूसरी तरफ सच यह भी है कि पत्रकार यदि राजनीति में जाते हैं तो वे बुरे राजनीतिज्ञ भी साबित होते हैं। पत्रकार अच्छे भाषण दे सकते हों, अच्छे राजनीतिज्ञ नहीं हो सकते। पत्रकार नए विचारों और घटनाओं से प्रभावित हो जाते हैं क्योंकि यह उनके स्वभाव और पेशे की मांग होती है, जबकि राजनीतिज्ञ एक तय दिशा में आगे बढ़ते रहना जानते हैं। वे अक्सर नए विचारों और घटनाओं से प्रभावित नहीं होते। ब्रिटेन और अमेरिका जैसे देशों में न्यायपालिका के माननीय न्यायाधीशों के निजी व्यवहार या जीवन के बारे में खुलकर छापा जा सकता है। ब्रिटेन में कुछ न्यायाधीशों के भ्रष्टाचार की खबरें बड़ी प्रमुखता से छपीं और यहां तक हुआ कि ऊंचे पदों पर बैठे न्यायाधीशों के लगभग अपमानजनक मुद्रा वाले उलटे चित्र भी पहले पेज पर प्रकाशित किए गए। आधुनिक पत्रकारिता के जनक जोसेफ पुलित्जर के ब्रह्म-वाक्य सदैव याद रखे जाने चाहिए कि 'प्रगति और सुधार के लिए सदैव संघर्ष करो, अन्याय और भ्रष्टाचार को कभी न सहो, सभी दलों के नेताओं से निपटो, किसी एक दल से मत जुड़ो, विशिष्ट वर्ग और सामाजिक लुटेरों का विरोध करो, गरीबों के प्रति सहानुभूति में कभी कमी मत आने दो, जन-कल्याण के लिए समर्पित रहो और केवल समाचार छापने मात्र से संतुष्ट न हो जाओ'। पत्रकारिता का मतलब है- यथार्थ में जीना, सत्य को पाने और सही रास्ता दिखाने के लिए ठीक देखना और वर्णन करना।

संविधान सभा की कार्यवाहियों में प्रेस की आजादी संबंधी प्रावधान की आवश्यकता महसूस की गई थी। इसे मूल अधिकार के तहत एक स्वतंत्र प्रावधान के रूप में शामिल करने के कई सुझाव पेश किए गए, लेकिन संवैधानिक सलाहकार डॉ. वीएन राउ के विचार में इसे अलग प्रावधान के रूप में रखने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में ही प्रेस की स्वतंत्रता शामिल थी। संविधान सभा की बहसों के दौरान डॉ. आंबेडकर ने भी यही विचार व्यक्त किया। उनके अनुसार प्रेस की आजादी का विशेष उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

इस विषय पर सुप्रीम कोर्ट ने 1950 में रोमेश थापर केस और बाद के कई मुकद्मों में अपने निर्णय दिए हैं।

...पेज 6 पर जारी

इसमें शक नहीं कि प्रेस का काम धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार और गुपचुप काम करने के तरीकों का पर्दाफाश करना है। प्रेस को सरकार का पर्दाफाश करना चाहिए, न कि सरकार द्वारा प्रेस का पर्दाफाश हो। साथ ही सरकार की वास्तविक उपलब्धियों की खबरें सही–सही दी जानी चाहिए। नागरिकों द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक जिम्मेदारियां निभाने के लिए यह उतना ही जरूरी है जितना कि सरकारी असफलताओं की खबरें देना। ऐसा अखबार, जो सरकार के पक्ष की खबरें प्रकाशित नहीं करता वह अपनी सामाजिक जिम्मेदारी सही ढंग से नहीं निभाता है।

उसने इस विचार का समर्थन किया है कि हमारे संविधान की धारा 19 (1) (ए) में अभिव्यक्ति की आजादी में ही प्रेस की आजादी निहित है। दूसरे शब्दों में यह आजादी नागरिकों की अभिव्यक्ति की आजादी के रूप में ली जानी चाहिए, जिसमें सूचना एवं विचार पाने और उनका प्रचार-प्रसार करने की आजादी शामिल है। धारा 19 (2) के तहत कुछ विषयों पर उचित अंकुश लगाए गए हैं। कुछ समय पहले संविधान समीक्षा राष्ट्रीय आयोग ने सुझाव दिया है कि प्रेस की आजादी को विशेष और स्पष्ट तौर पर मूलभूत अधिकार माना जाए।

प्रेस की आजादी का अर्थ क्या है और इसका क्षेत्र क्या है? यदि ध्यान से देखें तो आप पाएंगे कि इसमें अधिकारों के विविध प्रकार शामिल हैं। इसमें न सिर्फ अखबार के मालिक या संपादक या पत्रकार के अधिकार की गारंटी शामिल है, बल्कि समूह या समाज के सामूहिक अधिकार भी शामिल हैं। इसमें नागरिकों के पढ़ने और जानकारी या सूचना हासिल करने तथा सूचना देने के अधिकार भी शामिल हैं। सार रूप में यह अधिकार जनता द्वारा जानने का अधिकार है।

जानने के अधिकार का अर्थ मात्र अपने कौतुहल की संतुष्टि नहीं है या इधर-उधर फिजूल की खोजबीन करना नहीं है। इस अधिकार का अर्थ जनतंत्र की कार्यप्रणाली को अधिक प्रभावशाली बनाना है। आज सरकार का ढांचा काफी जटिल हो गया है और वह मानव गतिविधि के लगभग हर पहलू में प्रवेश कर चुका है। शक्ति का संकेंद्रण बढ़ गया है। कार्यकारिणी के पास व्यापक सत्ता पहुंच चुकी है। फलस्वरूप सत्ता के दुरुपयोग और भ्रष्टाचार की संभावनाएं बढ़ गई हैं। सरकार के कामकाज अधिकाधिक गुप्त रूप से या छिपाकर होने लगे हैं। चाहे जो भी पार्टी सत्ता में हो, सरकारी अफसर हर हालत में येन-केन प्रकारेण सूचना से दूर रखने का प्रयत्न करते हैं। इसका कारण यह है कि आज सूचना ही सत्ता है।

ऐसे जनतंत्र में, जो खुले समाज और सरकार में पारदर्शिता के मूल्यों का सम्मान करता है, नागरिकों को अपने देश के प्रशासन के बारे में सच्चे तथ्य जानने, हर सार्वजनिक कार्य के बारे में और जनता के सेवकों के बारे में जानने का अधिकार है। इसलिए प्रेस को एक सार्वजनिक मंच के तौर पर काम करना होगा, ताकि जनता जान सके कि सरकार और सार्वजनिक संस्थाओं में क्या हो रहा है। इससे नागरिकों को विभिन्न मुद्दों पर समझदारी से और सारगर्भित निर्णय लेने में मदद मिलेगी। इस प्रकार वे अपनी स्वतंत्र भूमिका का निर्वाह करते हुए सरकार पर अंकुश लगा पाएंगे और सत्ताधारियों के काम की प्रगति का लेखा-जोखा कर पाएंगे। जनतंत्र में जनता द्वारा सरकार चलाने का यह एक महत्वपूर्ण पहलू है। निष्कर्षत: प्रेस की आजादी का अर्थ है दायित्वबोध, जो प्रेस को जनतांत्रिक नियंत्रण का जरिया बनाता है। प्रेस की सच्ची आजादी उसकी इस क्षमता या इच्छा में निहित है कि वह प्रभावशाली ढंग से अपनी सामाजिक भूमिका निबाहे। वह सरकारी एवं सार्वजनिक मामलों पर खुलकर तथा तथ्यपूर्ण सार्वजनिक चर्चा करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह सभी व्यक्तियों, पार्टियों एवं हितों के प्रकटीकरण को बढ़ावा दे, न कि किसी एक ही पार्टी में राजनीतिक एजेंडा को। इस प्रकार वह बहुलतावादी जनतांत्रिक समाज में विचारों की व्यापक पहल कर सकता है। यदि हमने यह मूल सच्चाई नहीं समझी तो प्रेस की आजादी एक खोखला नारा, एक संकीर्ण स्वार्थी विचार बनकर रह जाएगा। उस स्थिति में प्रेस की प्रशंसा में प्रयुक्त भारी-भरकम शब्द बेकार और खोखले साबित होंगे।

राजनीति में प्रेस की क्या भूमिका है? सरकार, पार्टियां और राजनीतिज्ञों की ओर प्रेस और प्रेस के लोगों का क्या रुख होना चाहिए? वॉल्टर लिपमान पत्रकारिता की एक महान हस्ती थे। उनके अनुसार इस कार्यक्षेत्र की एक बहुत बड़ी कमी है। पत्रकार खुद को बड़ा ऊंचा और शक्तिशाली मान बैठते हैं और स्वयं एक अलग किस्म की राजनैतिक शक्ति बन जाते हैं। वे इसी सत्ता को विकसित करने में लगे रहते हैं। लिपमान के अनुसार पत्रकार जितना शराब से बर्बाद हुए हैं, उससे कहीं अधिक स्वार्थ एवं अहंभाव से बर्बाद हुए हैं। लिपमान खुद अच्छी तरह जानते थे कि इन दो कारणों से पत्रकार कैसे बर्बाद होते हैं।

दूसरा खतरा यह है कि जब किसी अखबार का मालिक या संपादक किसी राजनैतिक पार्टी का प्रवक्ता बन जाता है तो उसका नैतिक पतन हो जाता है। जब कोई अखबार किसी राजनैतिक पार्टी से गहरे जुड़ जाता है तो वह अवश्यंभावी रूप से जानबूझ कर और सुसंगठित तरीके से सच्चाई छिपाने लगता है, सूचना का दायरा सीमित करने लगता है और पाठकों को सूचना से वंचित रखने लगता है। ऐसी स्थिति में अखबार जनसेवा या प्रशंसनीय कार्य करना न केवल बंद कर देता है, बल्कि समाज के लिए खतरा भी बन जाता है।

सफल प्रेस के लिए पहला सिद्धांत यह है कि वह सरकारी या आधिकारिक लालच से दूर रहे। प्रेस को विभिन्न तरीकों और बड़ी चालाकी से ललचाया जाता है। हम यह नहीं कहते कि पत्रकार, सरकार और सरकारी अफसरों को अछूत मानकर उनसे दूर रहें और सरकार से असहयोग करें। सरकार और प्रेस के बीच दुश्मनी के संबंध बनाने का कोई कारण नहीं है। सारा कुछ विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करता है। प्रेस द्वारा सरकार पर निरंतर हमले करते जाना उतना ही हानिकारक है, जितना उसका समर्थन करना। जनतांत्रिक समाज में विभिन्न प्रकार की चर्चाएं एवं विभिन्न स्तरों पर विचारों का आदान-प्रदान होते रहना चाहिए। इससे सभी प्रकार के हित और विचार प्रेस में अभिव्यक्ति पाएंगे। इसमें शक नहीं कि प्रेस का काम धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार और गुपचुप काम करने के तरीकों का पर्दाफाश करना है। प्रेस को सरकार का पर्दाफाश करना चाहिए, न कि सरकार द्वारा प्रेस का पर्दाफाश हो। साथ ही सरकार की वास्तविक उपलब्धियों की खबरें सही-सही दी जानी चाहिए। नागरिकों द्वारा सामाजिक एवं राजनैतिक जिम्मेदारियां निभाने के लिए यह उतना ही जरूरी है जितना कि सरकारी असफलताओं की खबरें देना। ऐसा अखबार, जो सरकार के पक्ष की खबरें प्रकाशित नहीं करता वह अपनी सामाजिक जिम्मेदारी सही ढंग से नहीं निभाता है। यदि किसी विशेष मामले में विस्तृत जांच के बाद कोई अखबार सरकार को किसी आरोप से बरी कर देता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने गलत सरकारी कामों का ध्यान रखना बंद कर दिया। हमेशा हरेक की अकारण तीखी आलोचना करते रहना बुद्धिमत्ता का नहीं, पागलपन का उदाहरण है। परिस्थिति के अनुसार प्रेस सरकार से मित्रता कायम कर सकता है, लेकिन सम्मानजनक दूरी रखते हुए। परंतु प्रेस और सरकार कभी भी आलिंगनबद्ध नहीं हो सकते। यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि हमारी न्यायपालिका ने प्रेस को उदारतापूर्वक समर्थन दिया है और निरंतर संरक्षण भी। हमारे संविधान में आजादी की उच्च या निम्न श्रेणी जैसी कोई चीज नहीं है। संविधान मूलभूत अधिकारों के बीच छोटे-बड़े का अंतर या भेदभाव नहीं बरतता। फिर भी सुप्रीम कोर्ट ने प्रेस की आजादी को ऊंचा स्थान दिया है। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार प्रेस की आजादी जनतंत्र में सबसे बहुमूल्य आजादी है, जिसे बरकरार रखा जाना चाहिए। वह हमारे जनतंत्र के स्तंभों में से एक है, जनतंत्र का पुण्यस्थल है, संविधान द्वारा प्रदत्त आजादियों में सबसे बहुमूल्य आजादी है।

टाइम्स प्रकाशन की बेनेट कोलमैन कंपनी के सुप्रसिद्ध केस में अखबारी कागज के आयात की नीति के तले प्रेस की आजादी पर अंकुश लगाने की कोशिश नहीं की गई थी। इंडियन एक्सप्रेस संबंधी एक महत्वपूर्ण निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट आश्वासन दिया था कि जब तक इस कोर्ट का अस्तित्व है, अखबारों को असंवैधानिक तरीके से अपनी आजादी कम होने या छीने जाने का डर नहीं होना चाहिए। आपातकाल के काले दिनों में भी हाईकोर्टों ने प्रेस की पाबंदियां रद्द कीं और मतभेदों के अधिकार का समर्थन किया था।

...पेज 7 पर जारी

मानवाधिकारों की रक्षा में प्रेस और न्यायपालिका एक-दूसरे के सक्रिय सहयोगी हैं। एक राष्ट्रीय दैनिक अखबार में मुकद्मों के दौरान लंबे समय तक जेलों में बंद कैदियों संबंधी रिपोर्ट छपी। इसके बाद कोर्ट ने इन मुकद्मों को अपने हाथ में लिया, अधिकारियों को नोटिस भेजे और इसके बाद निर्देश दिए, जिनके फलस्वरूप कई विचाराधीन कैदी छोड़ दिए गए। ऐसे कई उदाहरण हैं जब प्रेस उजागर किए गए मानवाधिकार उल्लंघन के मामलों में कोर्ट ने तुरंत कार्रवाई की।

उदाहरण के लिए दिमागी रूप से असंतुलित मरीजों के अस्पतालों में व्याप्त अव्यवस्था प्रेस ने उजागर की। साहसिक और वस्तुगत जांच के जरिये पत्रकारों ने पुलिस चौकियों में अन्य जगहों पर होने वाली मृत्यु की घटनाओं की खबरें प्रकाशित कीं। प्रेस के इन प्रयासों के कारण न्यायपालिका हरकत में आई और उसने कई पीड़ितों को मुआवजे दिलवाए। इस दिशा में काफी कुछ और भी किया जा सकता है। अखबारों में मानवाधिकार संबंधी विशेष कॉलम या पेज बनाए जा सकते हैं जो वर्तमान में नहीं हैं। शेयर बाजार संबंधी खबरें महत्वपूर्ण हैं और सौंदर्य प्रतियोगिताओं की खबरें मनोरंजक होती हैं। लेकिन मानवाधिकारों को इतना कम महत्व न दिया जाए कि प्रतिदिन अखबार में उसका उचित उल्लेख ही न हो।

प्रेस और न्यायपालिका अपने-अपने तरीके से सत्ता के दुरुपयोग पर अंकुश लगाने का काम करते हैं। प्रेस सरकार के कामों में छुपाव-दुराव तथा धोखाधड़ी का पर्दाफाश करता है, जैसे वाटरगेट या बोफोर्स या सेंट किट्स के मामलों में या गृह निर्माण योजनाओं या चारा घोटाले या डीएनए में जालसाजी एवं धोखे के मामले में।

दूसरी ओर अदालतें सत्ताधारियों को अपनी जिम्मेदारियों की याद दिलाती हैं और उन्हें फटकारती भी हैं, यहां तक कि कानूनी दबाव भी डालती हैं। वे कार्य की प्रगति संबंधी दबाव भी डालती हैं। इस प्रकार प्रेस तथा न्यायपालिका को स्वाभाविक सहयोगियों के रूप में देखा जाना चाहिए। दुर्भाग्य से वे परस्पर स्वाभाविक दुश्मनों के रूप में सामने आते हैं। प्रेम और घृणा का यह अजीब-सा संबंध है। संबंध तब खराब हो जाते हैं जब न्यायालय अपने अवमानना अधिकारों का प्रयोग करने लगते हैं।

न्यायालय की अवमानना के बारे में व्यापक और आश्चर्यकारक अज्ञानता व्याप्त है। यह सभी जानते हैं कि कोई भी व्यक्ति और प्रेस किसी भी प्रश्न पर न्यायालय के फैसलों की आलोचना करने के लिए आजाद है। वह उनकी तीखी आलोचना भी कर सकता है, क्योंकि आलोचना सार्वजनिक जीवन का एक अंग है। न्याय कोई बिंदुवस्तु नहीं है। यहां तक कि गलत विचारों और अपर्याप्त जानकारी वाले लोग भी इस पर गुस्से में आकर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकते हैं।

जनतंत्र के स्तंभों में से एक स्तंभ को हानि पहुंचाने का एक और तरीका फैसले देने वाले जजों की नीयत पर ही शक करना है। कहा जाता है कि वे बेईमान हैं और अन्य कारणों से अपने रास्ते से विचलित हो जाते हैं। इस प्रकार के प्रशासन और संबंधित संस्थाओं पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता है।

लेकिन यदि ये आरोप सचमुच सही हों तो? यदि पत्रकार के पास सचमुच अकाट्य प्रमाण हो, तब तो समस्या गंभीर हो जाती है। आज अदालत की अवमानना की जो प्रचलित व्याख्या है उसके अनुसार सत्यमेव जयते की घोषणा के बावजूद सच बोलने पर भी हम अवमानना के आरोप से नहीं बच सकते। यदि कोई व्यक्ति किसी न्यायिक अफसर के विरुद्ध आरोप साबित करने का प्रयत्न करता है तो वह अवमानना के दंड का और भी बड़ा अधिकारी होगा। एक गंभीर अंतर्विरोध है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि सच की दहलीज पर खड़ा आरोप, अभिव्यक्ति और प्रेस की आजादी पर अनुचित अंकुश अवमानना को बुलावा दे। यह न्यायपालिका में मौजूद भ्रष्टाचार एवं गलत कामों का पर्दाफाश रोकता है। सच यह है कि न्यायपालिका में ये खामियां व्याप्त हैं।

संपादकों के प्रभावशाली संगठन एडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया ने पिछले दिनों पत्रकारों पर भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप सामने आने के बाद एक आचार संहिता बनाए जाने की दिशा में पहल की है। प्रजातंत्र के चौथे स्तंभ की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगने तथा उसके खोखले होने के खतरे को देखते हुए यह चिंता स्वाभाविक है। सारी दुनिया को नीतियां, आदर्शों और नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले यदि स्वयं आशंकाओं के कठघरे में खड़े होंगे तो उनकी बातों का क्या मूल्य रहेगा?

लेकिन कई बाधाओं के कारण मीडिया के लोग भ्रष्टाचार एवं गलत कामों की सच्चाई प्रकाश में लाने से बचते हैं। न्यायपालिका में ऐसे सड़े हुए अंडे थोड़े-से ही हैं, लेकिन वे इस समूची संस्था को बदनाम करने के लिए काफी हैं। ईमानदारी और अंतरात्मा से काम करने वाले जजों के भारी बहुमत के प्रति यह अन्याय है। अवमानना संबंधी कानून बदलने की आवश्यकता है। सच्चाई को सार्वजनिक हितों से जोड़ना होगा। कोई ऐसा प्रावधान लाया जाए, जिससे अपने आरोप साबित कर पाने की स्थिति में कड़े नागरिक एवं आपराधिक दंड दिए जा सकें। इस संबंध में संविधान की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग ने संविधान एवं अदालतों की अवमानना एक्ट में उचित संशोधन करने का सुझाव दिया है।

संपादकों के प्रभावशाली संगठन एडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया ने पिछले दिनों पत्रकारों पर भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप सामने आने के बाद एक आचार संहिता बनाए जाने की दिशा में पहल की है। प्रजातंत्र के चौथे स्तंभ की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगने तथा उसके खोखले होने के खतरे को देखते हुए यह चिंता स्वाभाविक है। सारी दुनिया को नीतियां, आदर्शों और नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले यदि स्वयं आशंकाओं के कठघरे में खड़े होंगे तो उनकी बातों का क्या मूल्य रहेगा? सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रगति और जागरूकता के साथ जहां पत्रकार सूचना पाने के संवैधानिक अधिकार, सरकारी गोपनीयता कानूनों में संशोधन और अधिक संपादकीय स्वतंत्रता की जो आवाज उठा रहे हैं वह तभी सशक्त हो सकती है जबकि पत्रकार समुदाय आत्मानुशासन, ईमानदारी और विश्वसनीयता के मानदंडों पर खरा उतरेगा। पत्रकारों के बड़े-बड़े संगठन विदेशी प्रेस के खतरे, पेशेवर चुनौतियों हल्ला बोल जैसे दबावों, वेतन भत्तों-सुविधाओं इत्यादि की बात बहुत जोर-शोर से करते हैं, लेकिन अपने घर को झाड़ू-बुहारू के मुद्दे पर शिथिल पड़ जाते हैं।

स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए महात्मा गांधी और तिलक द्वारा चलाए गए अखबारों और उनके अभियानों को आदर्श बताते हुए कई क्षेत्रीय अखबार और पत्रकार स्वयं किसी दल या विचारधारा का समर्थन करते हुए नए-नए अभियान चलाने लगते हैं। लेकिन क्या ये अभियान केवल वैचारिक जागरूकता तक सीमित रहते हैं? अनुभव तो यही बताता है कि ऐसे अभियानों का लक्ष्य किसी दल या नेता विशेष को सत्ता में लाना अथवा गिराना होता है। यही नहीं, स्वयं राजनीति में कूदने के इरादों से अखबारों को सीढ़ियों की तरह इस्तेमाल किया जाने लगा है। जहां इस कार्य में कोई राजनीतिक प्रशासनिक या आर्थिक रुकावट आई, प्रेस की स्वतंत्रता की दुहाई देते हुए शहीदाना तेवर अपनाकर झंडा उठा लिया जाता है।

सभाओं, गोष्ठियों और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रेस की स्वतंत्रता का मुद्दा उठाते ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में मिल रही छूट तथा सुविधाओं की बात अवश्य की जाती है। लेकिन क्या स्वतंत्रता की कोई लक्ष्मण रेखा नहीं होती? जब छोटे से गांव या अपने मोहल्ले में चिकित्सा सुविधा देने के लिए भी न्यूनतम योग्यता या रजिस्ट्रेशन की अनिवार्यता होती है, जब दो पहियों का स्कूटर चलाने के लिए योग्यता-प्रशिक्षण और लाइसेंस की जरूरत होती है, जब हलवाई की दुकान चलाने के लिए भी नगर पालिका से लाइसेंस न होने और मिलावटी दूध या मिठाई होने पर जुर्माना हो सकता है, तब बिना किसी शिक्षा, प्रशिक्षण या आचार संहिता के पत्रकार बनने और मनमाने ढंग से अखबार निकालकर समाज के उत्थान या पतन की खुली छूट क्यों मिलनी चाहिए?

समाप्त...

व्याख्याता आउटलुक साप्ताहिक के संपादक हैं
व्याख्यानमाला- रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

टाइम्स का एक पत्रकार मुंबई पर हुए आतंकवादी हमले को कवर करने पहुंचा था। वह पल-पल की खबर को साइट पर अपडेट कर रहा था, उसकी इस तरह की हरकत पर पूरे विश्व में आलोचना हो रही है।

लाइव रिपोर्टिंग पर भड़का लोगों का गुस्सा

टाइम्स के बेटाइम कवरेज पर निशाना

न्यूयार्क। मुंबई पर हमले की घटना का लाइव कवरेज लगभग हर चैनल पर दिखाया जा रहा था। लोग घर बैठे ही आतंकवादियों और सेना की कार्रवाईयों को देख रहे थे लेकिन उस दिन इस पर किसी का ध्यान नहीं गया कि लोगों के साथ-साथ आतंकवादी भी खबरों से अपडेट हो रहे हैं।

उसके अगले दिन प्रसारण मंत्रालय ने सारे चैनल्स को सुरक्षा को मद्देनजर रखते हुए लाइव टेलीकास्ट पर रोक लगाने को कहा और चैनल्स ने उस आदेश का पूरी तरह से पालन भी किया, लेकिन इस पर किसी का ध्यान नहीं गया कि उस घटना को पूरी विश्व की मीडिया भी कवर कर रही है। उन्होंने भारत के चैनल्स पर तो अंकुश लगा दिया, लेकिन विदेशी चैनल्स और वेबसाइट का पल-पल अपडेशन कर रहे विदेशी पत्रकारों को रोक नहीं पाए। मुंबई की तबाही के मंजर को न्यूयॉर्क टाइम्स का पत्रकार कीथ ब्राडशेर वहीं से अपने ब्लैकबैरी से पल-पल अपडेट कर रहा था। कीथ की इस हरकत पर पूरे विश्व में जर्बदस्त प्रतिक्रिया हुई और लोगों ने अपने विचारों के जरिये उसके इस कृत्य की आलोचना भी की।

हो रही है निंदा

कीथ न्यूयॉर्क टाइम्स में 1996 से 2002 तक ब्यूरो चीफ भी रहे हैं। कीथ को पत्रकारिता अपने पिता से विरासत में मिली है, क्योंकि वे भी पत्रकार के रूप में काम कर चुके हैं। 9 साल की उम्र से ही ब्राडशीर न्यूजवीक को पढ़ते रहे हैं। भले ही उनकी जिंदगी में पत्रकारिता ही एकमात्र लक्ष्य रहा हो, लेकिन इस लाइव रिपोर्टिंग से उन्हें अपने ही देश में लोगों की निंदा का सामना करना पड़ रहा है।

ताक पर नियम

सितंबर में सूचना और प्रसारण मंत्री दासमुंशी ने विदेशी पब्लिकेशंस के लिए नियमों में बदलाव किए थे। फोर्ब्स और फॉर्च्यून जैसी पत्रिकाएं भारतीय मीडिया ग्रुप के साथ साझेदारी के साथ काम कर रही हैं लेकिन पूर्ण रूप से लांच करने के लिए उन्हें अभी भी इंतजार करना पड़ रहा है। बिजनेस वीक और इकॉनोमिस्ट भी भारतीय संस्करण निकलने के लिए इंतजार में हैं। मुंबई मसले पर टाइम्स के पत्रकार की तरफ से जिस तरह से रिपोर्टिंग की गई और पल-पल की जानकारी ऑनलाइन हो रही थी वह भारतीय सूचना और प्रसारण नियमों का उल्लंघन है। खबरों पर आधारित विदेशी मैगजीन को नोटिफिकेशन मिलने के बाद भी वे केवल प्रतिकृति रूप में भारतीय संस्करण निकाल सकते हैं। बिना अनुमति के यदि वे ऐसा करते हैं तो वह नियमों को दरकिनार करना होगा। *(डीबी स्टार से)*

लोगों ने कहा

- मुझे उम्मीद है कि आप जल्द ही इस अपडेट को रोक देंगे। आपके द्वारा भेजी जा रही खबरें और फोटो भारतीय सेना की कार्रवाई को और भी मुश्किल बना सकता है। आप यह जानकारी आतंकवादी तक पहुंचा रहे हैं। **-जॉयस**
- क्या मैं रिपोर्टर से यह सवाल पूछ सकता हूं कि क्यों वे इस ऑपरेशन के दौरान इस तरह की जानकारी ऑनलाइन कर रहे हैं। इससे आतंकवादियों को आक्रमण करने और बचाव करने की तरकीब एक साथ मिल जाएगी। यह अच्छा है कि किसी घटना की लाइव रिपोर्टिंग की जाए, लेकिन सुरक्षा का ध्यान भी रिपोर्टर को रखना चाहिए। जिम्मेदार पत्रकार को इस तरह की ब्रेकिंग न्यूज नहीं देनी चाहिए, जिससे ऑपरेशन में व्यवधान पड़े। **-केविन**
- क्या हो चल रहा है न्यूयॉर्क टाइम्स में? वे कमांडो की कार्रवाई को इस तरह लाइव क्यों दिखा रहे हैं? क्या आपको नहीं लगता कि आतंकवादी भी आपकी अपडेट को देख रहे होंगे और बाहर क्या चल रहा है उसकी पूरी जानकारी रख रहे होंगे। यह आपकी ओर से लिया गया बहुत ही खतरनाक निर्णय है। -ग्रेग ट्राइबे
- यह सच है कि सही समय पर सही खबरें भेजी जाएं लेकिन आपको नहीं लगता कि ये जानकारी आतंकवादियों को भी मिल रही होगी? **-एलेक्स**

खाड़ी मीडिया ने दी भारत को रणनीति बदलने की नसीहत

दुबई। खाड़ी देशों की मीडिया ने मुंबई में हुए आतंकवादी हमलों की निंदा करते हुए कहा है कि आतंकवादियों ने जितनी आसानी से अपनी कार्रवाई को अंजाम दिया है उसे देखते हुए भारत को आतंकवाद विरोधी अपनी रणनीति पर पुनर्विचार करना चाहिए।

खलीज टाइम्स ने अपने संपादकीय में लिखा- महाराष्ट्र सरकार को मुंबई में बढ़ते हमलों के मद्देनजर आतंकवाद विरोधी अपनी रणनीति पर पुनर्विचार करना चाहिए, लेकिन यदि आतंकवादी दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में भय पैदा करना चाहते हैं तो वे अपने मिशन में नाकाम रहे क्योंकि लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और बहुलतावादी भारत हमेशा की तरह सहनशील और निडर देश बना रहेगा। खाड़ी के अन्य प्रमुख अखबारों ने भी इन हमलों की निंदा की है और कहा है कि वक्त की मांग है कि भारत के विभिन्न धर्मों के लोगों को आपसी मतभेद भुलाकर एकजुट होना चाहिए। गल्फ न्यूज ने लिखा अभी तक इन हमलों के प्रायोजकों के बारे में अभी कुछ स्पष्ट रूप से कुछ सामने नहीं आया है, लेकिन ऐसा कहा जा रहा है कि हमलावर इस्लामी थे। लेकिन इस्लाम के नाम पर इस तरह की आतंकवादी वारदात करना हास्यास्पद है, क्योंकि इस्लाम कभी इस तरह का काम करने की अनुमति नहीं देता है।

संपादकीय ने लिखा यह महत्वपूर्ण है कि समूचा विश्व आतंकवादियों के विरोध में भारत के साथ एकजुट होकर खड़ा है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। इसने समय-समय पर साबित भी किया है कि सहनशीलता के इसके लोकतांत्रिक सिद्धांत की गहरी पैठ है। कई धार्मिक कट्टरपंथी भारत के इस स्वरूप को नष्ट करने की कोशिश में लगे हैं, लेकिन उसने अपने उदार और धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को बरकरार रखा है। कतर से प्रकाशित होने वाले दैनिक पेनिनसुला ने लिखा कि आतंकवादियों को परास्त करने में भारत और पाकिस्तान को मिल-जुलकर काम करना चाहिए। उसने लिखा कि विदेश मंत्री प्रणब मुखर्जी का यह कहकर पाकिस्तान की ओर अंगुली उठाना चिंताजनक है कि इस बात के पर्याप्त सबूत हैं कि इस हमले में पाकिस्तान की लिप्तता है। दैनिक ने कहा कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि ये हमले ऐसे समय में हुए हैं जब भारत और पाकिस्तान दोस्ताना संबंध बनाने की ओर अग्रसर हैं। दोनों देशों के नेताओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हाल के दिनों में हुई राजनयिक प्रगति को आतंकवादी नुकसान न पहुंचाने पाएं। *(एजेंसी)*

स्वामी मूल्यानुगत मीडिया अभिक्रम समिति के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक मनीष श्रीवास्तव द्वारा स्पूतनिक प्रिंटिंग प्रेस 166, रवींद्रनाथ टैगोर मार्ग, इंदौर से मुद्रित एवं बी-9, फिरोज गांधी प्रेस परिसर, इंदौर 452001 से प्रकाशित। **संपादक- कमल दीक्षित**